हरिजन मन्दिर प्रवेश के सम्बन्ध में
मेरा स्पष्टीकरण

गणेश प्रसाद वर्णी

जब से हरिजन मन्दिर प्रवेश चर्चा चली, कुछ लोगों ने अपने स्वभाव या पक्ष विशेष की प्रेरणा से हरिजन मंदिर प्रवेश के विधि-निषेध साधक आन्दोलनों को उचित अनुचित प्रोत्साहन दिया। कुछ लोगों को जिन्हें आगम के अनुकूल किन्तु अपनी यथेच्छा के प्रतिकूल विचार सुनाई दिये, उन्होंने कहना प्रारम्भ किया कि— "वर्णी जी हरिजन मन्दिर प्रवेश के पक्षपाती हैं!" इतना ही नहीं दल विशेष और पक्ष विशेष का आश्रय लेकर अपनी स्वार्थ साधना के लिए यदा-कदा आगम प्रमाण भी उपस्थित करते हुए मेरे प्रति भी जो कुछ मन में आया ऊटपटांग कह डाला। इसमें मुझे जरा भी रोष नहीं। परन्तु उन सम्भ्रान्त जनों के निराकरण के लिए स्पष्टीकरण आवश्यक है। यद्यपि इसमें न तो पक्षपाती बनने की इच्छा है, न विरोधी बनने की। परन्तु आत्मा की प्रबल प्रेरणा सदा यही रहती है कि "जो मन में हो सो वचनों से कहो, यदि नहीं कह सकते तब तुमने अब तक धर्म का मर्म ही नहीं समझा।" माया, छल, कपट, वाक्, प्रपञ्च आदि वञ्चकता के इन्हीं रूपान्तरों के त्यागपूर्वक जो वृत्ति होगी, वही धार्मिकता भी कहलायेगी। यही कारण है कि इस विषय में कुछ लिखना आवश्यक

प्रतीत हुआ ।

हरिजन और उनका उद्धार

अनन्तानन्त आत्माए है परन्तु लक्षण सबके नाना नही, एक-एक ही है । भगवान् उमास्वामी ने जीव का लक्षण उपयोग कहा है । भेद अवस्था प्रयुक्त है, अवस्था परिवर्तनशीला है, एक दिन जो बालक थे अवस्था परिवर्तन होते-होते आज वृद्ध अवस्था को प्राप्त हो गये । यह तो शारीरिक परिवर्तन हुआ । आत्मा मे भी परिवर्तन हुआ । एक दिन ऐसा था जो दिन में दस बार पानी और पाच बार भोजन करते भी सकोच नही करते थे, वे आज एक बार ही भोजन और जल लेकर सतोष करते है । कहने का तात्पर्य यह कि सामग्री के अनुकूल प्रतिकूल मिलने पर पदार्थो मे तदनुसार परिणमन होते रहते है । आज जिनको हम नीच, पतित या घृणित जाति के नाम से पुकारते है उनकी पूर्वावस्था (वर्ण-व्यवस्था प्रारम्भ होने के समय) को सोचिये ओर आज की अवस्था से तुलनात्मक अध्ययन कीजिए । उस अवस्था से इस अवस्था तक पहुचने के कारणो का यदि विश्लेषण किया जाय, तो यही सिद्ध होगा कि बहुसख्यक वर्ग की तुलना मे उन्हे उनके उत्थान-साधक अनुकूल कारण नही मिले, प्रतिकूल परिस्थितियो ने उन्हें बाध्य किया । फलत ६० प्रतिशत हिन्दू जनता के २०-२५ प्रतिशत इस जाति को विवश, यह दुर्दिन देखने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ । उसकी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एव धार्मिक सभी समस्याए जटिल होती गई । उनकी दयनीय दशा पर कुछ सुधारको को तरस आया, गाधी जी ने उनके उद्धार की सफल योजना सक्रिय की, क्योकि उनकी समझ में यह अच्छी तरह आ चुका था

कि यदि उनको सहारा न दिया गया तो जितने ही सुधार हों, जितने ही धर्म-प्रचार हों, राष्ट्र का यह काला दाग धुल न सकेगा। वे सदा के लिए हरिजन (जिनके लिए केवल हरि का ही सहारा हो, और सब सहारा के लिए असहाय हों) ही रह जावेंगे।'' यही कारण था कि हरिजनों के उद्धार के लिए गांधी जी ने अपनी सत्साधना का उपयोग किया। विश्व के साधु-सन्तों ने जोरदार शब्दों में आग्रह किया, 'धर्म किसी की पैतृक सम्पत्ति नहीं।'' यह स्पष्ट करते हुए उन्होंने हरिजनों के उद्धार के लिए सब कुछ त्याग दिया, सब कुछ कार्य किया, दूसरों को भी ऐसा ही करने का उपदेश दिया। हमारे आगम में शूद्र वर्णी को व्रती लिखा है, शूद्र पातक कल्पवासी देव होना भी लिखा है। यही नहीं, श्री रामचन्द्र जी का मृग स्वानुमोह दूर करने में उनका निमित्त होना भी लिखा है।

आधुनिक युग में हरिजनों का उद्धार एक रचनात्मक कार्य कहा जा सकता है। धर्म भी हमारा पतितपावन है। यदि हरिजन पतित ही हैं, तो हमारा विश्वास है कि जिस जैन धर्म के प्रबल प्रताप से यमपाल चाण्डाल जैसे सद्गति के पात्र हो गये हैं, उससे उन हरिजनों का उद्धार हो जाना कोई कठिन कार्य नहीं है।

वैश्य कौन, शूद्र कौन ?

''जैन दर्शन'' सम्पादक जी ने मेरे लेख पर शूद्रों के विषय में बहुत कुछ लिखा है। आगम प्रमाण भी दिए हैं। अस्तु, आगम की बात को मैं सादर स्वीकार करता हूँ, परन्तु आगम का अर्थ जो आप लगाते वही ठीक है। यह कैसे कहा जा सकता है? श्री १०८

कुन्दकुन्द स्वामी ने तो यहा तक लिखा है।

त एयत्तविहत्त, दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाण, चुक्किज्ज छल ण घेतव्व॥

उस एकत्व विभक्त आत्मा को मैं आत्मा के निज विभव कर दिखलाता हू। जो मैं दिखलाऊ, तो उसे प्रमाण (स्वीकार) करना। और जो कही पर भूल-चूक जाऊ, तो छल नही ग्रहण करना।

आगम मे लिखा है कि जो अस्पर्श शूद्र से स्पर्श हो जावे, तब स्नान करना चाहिए। अस्पर्श क्या अस्पर्श जाति मे पैदा होने से ही हो जाता है तब तीन वर्णों में (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) पैदा होने से सभी को उत्तम हो जाना चाहिए? परन्तु देखा यह जाता है कि यदि उत्तम जाति वाला निद्य काम करता है, तब वह चाण्डाल गिना जाता है। उससे लोग घृणा करते है। गाधी जी के हत्यारे गौडसे का उदाहरण नया ही है। घृणा की तो बात ठीक ही है। लोग उसे पक्ति भोजन आदि सामाजिक कर्मों में सम्मिलित नही करते। जो मनुष्य नीच जाति में उत्पन्न होता है, परन्तु यदि वह धर्म को अगीकार कर लेता है तो उसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, उसे प्रमाणित व्यक्ति माना जाता है। यह तो यहा के मनुष्यो की बात है, किन्तु जहा न तो कोई उपदेष्टा है, न मनुष्यो का सद्भाव है ऐसे स्वयम्भूरण द्वीप और समुद्र मे असख्यात तिर्यंच मछली मगर तथा अन्य स्थलचर जीव व्रती होकर स्वर्ग के पात्र हो जाते है, तब कर्मभूमि के मनुष्य व्रती होकर यदि जैनधर्म पाले तब आप क्या रोक सकते है? आप हिन्दू बनिए, यह कौन कहता है। परन्तु हिन्दू जो उच्च कुल वाले है वे यदि मुनि बन जावे तब आपको क्या आपत्ति है?

हिन्दू शब्द का अर्थ मेरी समझ में धर्म से सबंध नहीं रखता। जैसे भारत का रहने वाला भारतीय कहलाता है, इसी तरह देश-विदेश की अपेक्षा यह नाम पड़ा प्रतीत होता है। जन्म से मनुष्य एक सदृश उत्पन्न होते हैं किन्तु जिनको जैसा सम्मान मिला उसी तरह उनका परिगणन हो जाता है, भगवान आदिनाथ के समय तीन वर्ण थे, भरत ने ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की यह आदि पुराण से विदित है। इससे सिद्ध है कि इन तीन वर्णों में से ही ब्राह्मण हुए। मूल में तीन वर्ण कहां से आये, विशेष ऊहापोह न करें तो आप ही अपने को वैश्य सिद्ध कर सकते हैं और वे शूद्र कौन थे, यह निर्णय भी आप दे सकते हैं।

शूद्रों के प्रति कृतज्ञ बनिये

"जैन दर्शन' सम्पादक जी ने आज लिखा है कि 'आचार्य महाराज दयालु हैं' तब क्या यह शूद्र उनकी दया के पात्र नहीं हैं? लोग अपनी त्रुटि को नहीं देखते। लोगों का जो उपकार शूद्रों से होता है, अन्य से नहीं होता। यदि ये एक दिन भी सो जाएं, कचा-घर, शौच-गृह आदि स्वच्छ रखना बन्द कर दें तब पता लग जावेगा। परन्तु उनके साथ आप जो व्यवहार करते हैं यदि उसका वर्णन किया जावे तो प्रमाद वश पड़े। वे तो आपका उपकार करते हैं परन्तु आप पवित-भाजन जब होता है तब आप अच्छा-अच्छा माल अपने उदर में स्वाहा कर लेते हैं और उच्छिष्ट पानी से सिंचित पत्तलों को उनके हवाले कर देते हैं। अच्छे-अच्छे फल तो आप खा गये और सड़े-गले या आन-चान फेंक देते हैं उन बिचारों को! इस पर भी कहते हो हम, आर्य पद्धति की रक्षा करते हैं, बलिहारी इस दया की, धर्मधुरन्धरता की।

शूद्र भी धर्म धारण कर व्रती हो सकता है

यह तो सभी मानते है कि धर्म किसी की पैतृक सम्पत्ति नही। चतुर्गति के जीव सम्यक्त्व उपार्जन की योग्यता रखते है, भव्यादि विशेषण सम्पन्न होना चाहिए। धर्म वस्तु स्वत सिद्ध है, और प्रत्येक जीव में है, विरोधी कारण पृथक् होने पर उसका स्वय विकास होता है और उसका न कोइ हरता है और न दाता ही है। इस पचम काल मे उसका पूर्ण विकास नही होता। चाहे गृहस्थ हो चाहे मुनि हो। गृहस्थ मे सभी मनुष्यो मे व्यवहार धर्म का उदय हो सकता है यह नियम नही कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही उसे धारण करे, शूद्र उससे वचित रहे।

गिद्ध पक्षी मुनि के चरणो मे लेट गया, उसके पूर्वभव मुनि ने वर्णन किये, रामचन्द्र जी ने सीता जी की रक्षा का भार सुपुर्द किया। जहा गृहपक्षी व्रती हो जाये, वहा शूद्र शुद्ध नही हो सकते, बुद्धि में नही आता। यदि शूद्र इन कार्यो को त्याग देवे और मद्यादि खाना छोड देवें, तब वह व्रती हो सकता है। मदिर आने की स्वीकृति देना न देना आपकी इच्छा पर है। परन्तु इस धार्मिक कृत्य के लिए जैसे आप उनका बहिष्कार करते है वैसे ही कल्पना करो, यदि वे धार्मिक कृत्य के लिए आपका बहिष्कार कर दे, असहयोग कर दें, तब आप क्या करेंगे ? सुनार गहना न बनावे, लुहार लोहे का काम न करे, बढई हल न बनावे, लोधी कुरमी आदि खेती न करें, धोबी वस्त्र प्रक्षालन छोड देवे, चर्मकार मृत पशु न हटायें, बसौरिन सौरी का काम न करे, भगिन शौचगृह शुद्ध न करे तब ससार मे हाहाकार मच जावेगा। हैजा, प्लेग, चेचक और क्षय जैसे भयकर रोगो का आक्रमण हो जावेगा। अत बुद्धि मे

काम लेना चाहिए। उनके साथ मानवता का व्यवहार करना चाहिए जिससे वह भी सुमार्ग पर आ जावे। उनके बालक भी अध्ययन करें, तब आपके बालकों के सदृश वे भी बी० ए०, एम० ए० बैरिस्टर हो सकते हैं, मन्दिर पर तब आ जाते हैं गवनें हैं। फिर जिस तरह आप पंच पाप त्याग कर व्रती बनते हैं यदि वे भी पंच पाप त्याग दें, तब उन्हें व्रती होने से कौन रोक सकता है? सागर में एक भंगी प्रतिदिन शास्त्र श्रवण करने आता था, संसार से भयभीत भी होता था, मांसादि का त्यागी था, शास्त्र सुनने में कभी भूल न करना उसे सह्य न था।

धर्म किसी की पैतृक सम्पत्ति नहीं

आप लोगों ने यह समझ रखा है कि हम जो व्यवस्था करें वही धर्म है। धर्म का सम्बन्ध आत्म द्रव्य से है, न कि शरीर से, हां यह अवश्य है, जब तक आत्मा अज्ञानी रहता है, तब तक वह सम्यग्दर्शन का पात्र नहीं होता। संज्ञी होते ही धर्म का पात्र हो जाता है। आर्ष वाक्य है कि चारों गति वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव इस अनन्त संसार में शाश्वत सम्यग्दर्शन का पात्र हो सकता है। यहां पर यह नहीं लिखा कि अस्पर्श शूद्र या हिंसक सिंह या व्यन्तरादि या नरक के नारकी इसके पात्र नहीं होते। जनता को भ्रम में डाल कर इस पक्ष को चलाना और अपने को बुद्धिमान् कह देना बुद्धिमानी नहीं। आप जानते हैं कि संसार में जितने प्राणी हैं सभी सुख चाहते हैं और सुख का कारण धर्म है, उसका अन्तरंग साधन तो निज में है, फिर भी उसके विकास के लिए बाह्य साधनों की आवश्यकता है।

जैसे घटोत्पत्ति मृत्तिका से ही होती है। फिर भी कुम्भकारादि बाह्य साधनों की आवश्यकता अपेक्षित है, एवं अन्तरंग साधन

तो आत्मा में ही है फिर भी बाह्य साधना की अपेक्षा रखता है। बाह्य साधन देव, गुरु, शास्त्र हैं, आप लोगो ने यहा तक प्रतिबन्ध लगा रखे है, कि अस्पर्श शूद्रो को मदिर में आने का भी अधिकार नही है। उनके आने से मदिर मे अनेक प्रकार के विघ्न होने की सम्भावना है। यदि शात भाव से विचार करो, तब पता लगेगा कि उनके मदिर मे आने से किसी प्रकार की हानि नही, अपितु लाभ ही होगा। प्रथम तो जो हिंसा आदि महा पाप ससार में होते हैं यदि वे अस्पर्श शूद्र जैन धर्म को अगीकार करेंगे, तब वह पाप अनायास ही कम हो जायेंगे। आपके वश मे ऐसा भले ही न हो, परन्तु यदि दैवात् हो जाये तब आप क्या करेंगे ? चाण्डाल को भी राजा का पुत्र चमर ढुलाते देखा गया, ऐसी जो कथा प्रसिद्ध है क्या वह असत्य है ? अथवा कथा छोडो, श्री समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में लिखा है—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातगदेहजम्।
देवा, देव विदुर्भस्मगूढागारान्तरौजसम् ॥

आत्मा मे अचिन्त्य शक्ति है, जैसे आत्मा अनन्त ससार के कारण मिथ्यात्व करने मे समर्थ है, उसी तरह अनन्त ससार के बधन काटने में भी समर्थ है। आप विद्वान् है, जो कुछ आपकी इच्छा हो सो लिखिये, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि यदि कोई अन्य व्यक्ति अपने विचार व्यक्त करे, तो उसे रोकने की चेष्टा करे। आप की दया तो प्रसिद्ध है, रहे, हमे इसमें कोई आपत्ति नही। आप सप्रमाण यह लिखिये कि अस्पर्श शूद्रो को चरणानुयोग की आज्ञा मे धर्म करने का कितना अधिकार है ? तब हम लोगो का यह वाद जो आपको अरुचिकर हो शान्त हो जावेगा। पूज्य श्री आचार्य

महाराज से ही इस व्यवस्था को पूछ कर लिख दीजिये, जिससे व्यर्थ विवाद न हो। केवल समालोचना से काम न चलेगा। शूद्रो के विषय में जो कुछ भी लिखा जावे, सप्रमाण ही लिखा जावे। कोइ शक्ति नही जो किसी के विचारो का घात कर सके। निमित्त तो अपना काम करेगा, उपादान भी अपना ही कार्य करेगा।

बन्दर-घुड़की से काम न चलेगा

एक महाशय श्री निरजनलाल ने "जैनमित्र" अक २० मे तो यहा तक लिखा कि तुम्हारा क्षुल्लक पद छीन लिया जावेगा, मानो आपके ही हाथ में धर्म की सत्ता आ गई है। यह 'सजद' पद नही जो मनचाहा हटवा दिया, शास्त्र-परम्परा या आगम के विच्छेद करने में जरा भी भय नही किया। "जैन दर्शन" के सम्पादक ने जो लिखा उसका प्रत्युत्तर देना मेरे ज्ञान का विषय नही, क्योकि मै न तो आगमज्ञ हू और न हो सकता हू। परन्तु मेरा हृदय यह साक्षी देता है कि मनुष्य पर्याय वाला जो भी चाहे, चाहे वह कोई भी जाति हो, कल्याण मार्ग का पथिक हो सकता है। शूद्र भी सदाचार का पात्र है, हा यह अन्य बात है, कि आप लोगो द्वारा जो मदिर निर्माण किये गये है, उनमे उन्हे मत आने दो। शासक वर्ग भी आपके अनुकूल ऐसा कानून बना दें परन्तु जो सिद्ध-क्षेत्र है, कोई अधिकार आपको नही, जो उन्हें वहा जाने से आप रोक सके। मन्दिर के शास्त्र भले ही आप अपने समझ कर उन्हें न पढने दें परन्तु सार्वजनिक शास्त्रागार, पुस्तकालय, वाचनालयो मे तो आप उन्हें शास्त्र, पुस्तक, समाचार-पत्रादि पढने से मना नही कर सकते। यदि वह पच पाप छोड देवें और रागादि रहित आत्मा को पूज्य मानें, भगवान् अरहन्त का स्मरण करे, तब क्या आप उन्हे

ऐसा करने से रोक सकते है ? जो इच्छा हो सो करो।

मुझे जो यह धमकी दी कि "पीछी कमण्डलु छीन लेंगे।" कौन डरता हूँ ? सर्वानुयायी मिलकर चर्या भी वन्द कर दो, परन्तु धर्म मे हमारी अटल श्रद्धा है, उसे आप नही छीन सकते। मेरा हृदय आपकी वन्दर-घुडकी से नही डरता, मेरे हृदय में दृढ विश्वास है कि अस्पर्श शूद्र सम्यग्दर्शन और व्रतो का पात्र है। मन्दिर आने-जाने की वात आप जानें, या जो श्री पूज्य आचार्य महाराज कहे उसे मानो। यदि अस्पर्श का सम्वन्ध शरीर से है तव रहे, इसमें आत्मा की क्या हानि है ? और यदि अस्पर्श का सम्वन्ध आत्मा से है, तव जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया वह अस्पर्श कहा रहा ? मेरा तो यह विश्वास है कि गुण स्थानो की परिपाटी में जो मिथ्या गुणस्थानवर्ती है वह पापी है। तव चाहे वह उत्तम वर्ण का क्यो न हो, यदि मिथ्या दृष्टि है तव परमार्थ से पापी ही है। यदि सम्यक्त्वी है, तव उत्तम आत्मा है।

यह विषय शूद्रादि चारो वर्णो पर लागू है। परन्तु व्यवहार मे मिथ्या-दर्शन सम्यग्दर्शन का निर्णय वाह्य आचरणो से है, अत जिसके आचरण शुभ है, वही उत्तम कहलाते है, जिनके आचरण मलिन है, वे जघन्य हैं। तव एक उत्तम कुल वाला यदि अभक्ष भक्षण करता है, वेश्यागमनादि पाप करता है, उसे भी पापी जीव मानो। और उसे मदिर मत आने दो, क्योकि शुभाचरण से पतित अस्पर्श और असदाचारी है। शूद्र यदि सदाचारी है तव वह आपके मत से व पूज्य आचार्य महाराज की आज्ञा से भगवान् के दर्शन का अधिकारी भले ही न हो, परन्तु पचम गुणस्थान वाला अवश्य है। पाप-त्याग ही की महिमा है। केवल उत्तम कुल में जन्म लेने

मे ही व्यक्ति उत्तम हो जाता है, ऐसा कहना दुराग्रह ही है। उत्तम कुल की महिमा सदाचार से ही है, कदाचार मे नही। नीच कुल भी मलिनाचार से कलकित है। उसमें मास खाते है, मृत पशुओ को ले जाते है, आपके शौचगृह साफ करते है, इसी से आप उन्हे अस्पृश्य कहते है।

सच पूछा जाय तो आपको स्वय स्वीकार करना पडेगा कि उन्हें अस्पृश्य बनाने वाले आप ही है। इन कार्यो से यदि वह परे हो जावें, तो क्या आप उन्हे तब भी अस्पर्श मानते जावगे ? बुद्धि में नही आता कि आज एक भगी यदि इसाई हो जाता है और वह पढ-लिखकर डाक्टर हो जाता है तब आप लोग उसकी दवा गट-गट पीते है या नही, फिर क्यो उससे स्पर्श कराते है ? आप से तात्पर्य बहुभाग जनता से है। आज जो व्यक्ति पाप कर्म में रत है वे यदि किसी आचार्य महाराज के सान्निध्य को पाकर पापो का त्याग कर देवें, तब क्या वे धर्मात्मा नही हो सकते ? प्रथमानुयोग मे ऐसे बहुत दृष्टात है। व्याघ्री ने सुकौशल स्वामी के उदर को विदारण किया और वही श्री कीर्तिधर मुनि के उपदेश से विरक्त हो समाधिमरण कर स्वर्ग-लक्ष्मी की भोगता हुई। अत किसी को भी धर्म-सेवन से वचित रखने के उपाय कर पाप के भागी मत बनो।

हम तो सरल मनुष्य है, आपकी जो इच्छा हो सो कह लो, आप लोग ही धर्म के ज्ञाता और आचरण करने वाले रहे, परन्तु ऐसा अभिमान मत करो कि हमारे सिवाय दूसरे कुछ नही जानते। "पीछी कमण्डलु छीन लेंगे" इससे हमें भय ही क्या है ? क्योंकि यह तो बाह्य चिन्ह है, इनके कार्य तो कोमल वस्त्र और अन्य पात्र

ऐसा करने से रोक सकते है ? जो इच्छा हो सो करो।

मुझे जो यह धमकी दी कि "पीछी कमण्डलु छीन लेंगे।" कौन डरता है ? सर्वानुयायी मिलकर चर्या भी वन्द कर दो, परन्तु धर्म में हमारी अटल श्रद्धा है, उसे आप नही छीन सकते। मेरा हृदय आपकी वन्दर-घुडकी से नही डरता, मेरे हृदय में दृढ विश्वास है कि अस्पर्श शूद्र सम्यग्दर्शन और व्रतो का पात्र है। मन्दिर आने-जाने की वात आप जाने, या जो श्री पूज्य आचार्य महाराज कहे उसे मानो। यदि अस्पर्श का सम्वन्ध शरीर से है तव रहे, इसमें आत्मा की क्या हानि है ? और यदि अस्पर्श का सम्वन्ध आत्मा से है, तव जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया वह अस्पर्श कहा रहा ? मेरा तो यह विश्वास है कि गुण स्थानो की परिपाटी में जो मिथ्या गुणस्थानवर्ती है वह पापी है। तव चाहे वह उत्तम वर्ण का क्यो न हो, यदि मिथ्या दृष्टि है तव परमार्थ से पापी ही है। यदि सम्यक्त्वी है, तव उत्तम आत्मा है।

यह विषय शूद्रादि चारो वर्णो पर लागू है। परन्तु व्यवहार मे मिथ्या-दर्शन सम्यग्दर्शन का निर्णय वाह्य आचरणो से है, अत जिसके आचरण शुभ है, वही उत्तम कहलाते है, जिनके आचरण मलिन है, वे जघन्य हैं। तव एक उत्तम कुल वाला यदि अभक्ष भक्षण करता है, वेश्यागमनादि पाप करता है, उसे भी पापी जीव मानो। और उसे मदिर मत आने दो, क्योकि शुभाचरण से पतित अस्पर्श और असदाचारी है। शूद्र यदि सदाचारी है तव वह आपके मत से व पूज्य आचार्य महाराज की आज्ञा से भगवान् के दर्शन का अधिकारी भले ही न हो, परन्तु पचम गुणस्थान वाला अवश्य है। पाप-त्याग ही की महिमा है। केवल उत्तम कुल में जन्म लेने

से ही व्यक्ति उत्तम हो जाता है, ऐसा कहना दुराग्रह ही है। उत्तम कुल की महिमा सदाचार से ही है, कदाचार से नही। नीच कुल भी मलिनाचार से कलंकित है। उसमें मास खाते है, मृत पशुओ को ले जाते है, आपके शौचगृह साफ करते है, इसी से आप उन्हे अस्पर्श कहते है।

सच पूछा जाय तो आपको स्वय स्वीकार करना पडेगा कि उन्हे अस्पर्श बनाने वाले आप ही है। इन कार्यो से यदि वह परे हो जावें, तो क्या आप उन्हे तब भी अस्पर्श मानते जावेंगे ? बुद्धि में नही आता कि आज एक भगी यदि इसाई हो जाता है और वह पढ-लिखकर डाक्टर हो जाता है तब आप लोग उसकी दवा गट-गट पीते है या नही, फिर क्यो उससे स्पर्श कराते है ? आप से तात्पर्य बहुभाग जनता से है। आज जो व्यक्ति पाप कर्म में रत है वे यदि किसी आचार्य महाराज के सान्निध्य को पाकर पापो का त्याग कर देवें, तब क्या वे धर्मात्मा नही हो सकते ? प्रथमानुयोग में ऐसे बहुत दृष्टात है। व्याघ्री ने सुकौशल स्वामी के उदर को विदारण किया और वही श्री कीर्तिवर मुनि के उपदेश से विरक्त हो समाधिमरण कर स्वर्ग-लक्ष्मी की भोगता हुई। अत किसी को भी धर्म-सेवन से वचित रखने के उपाय कर पाप के भागी मत बनो।

हम तो सरल मनुष्य है, आपकी जो इच्छा हो सो कह लो, आप लोग ही धर्म के ज्ञाता और आचरण करने वाले रहे, परन्तु ऐसा अभिमान मत करो कि हमारे सिवाय दूसरे कुछ नही जानते। "पीछी कमण्डलु छीन लेंगे" इससे हमें भय ही क्या है ? क्योकि यह तो बाह्य चिन्ह है, इनके कार्य तो कोमल वस्त्र और अन्य पात्र